उपन्यास अंश

# मैं हनुमान

➲ पवन कुमार

आत्मकथा लिखना कदापि सहज कार्य नहीं होता। वैसे भी आत्मकथा लिखना भक्तों को शोभा नहीं देता। तिस पर मैं ठहरा राम भक्त अनादि काल से अनन्त काल तक। मेरी आत्मकथा होगी भी तो क्या होगी, श्रीराम महिमा ही होगी। उस महिमा वर्णन में जहाँ कहीं भी मुझ अकिंचन की भूमिका होगी, उसी का वर्णन ही मेरी आत्मकथा होगी। सम्भव है कि वर्णन में कुछ आत्म प्रशंसा हो जाए, यदि आपको ऐसा प्रतीत हो तो इस श्रीराम भक्त को सदाशयता के साथ क्षमा कर दीजिएगा। मैं यह आत्मकथा अपने जन्म से ही आरम्भ करूँगा किन्तु इस कथा से पूर्व कतिपय बिन्दुओं पर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। मेरे आराध्य प्रभु श्रीराम ने मुझे अमरत्व प्रदान किया है। जिस प्राणी को अमरत्व प्राप्त हो गया हो, उसका जन्म होना भी अपने आप में विरोधाभासी है, किन्तु किया भी क्या जा सकता है? आत्मकथा का प्रारम्भ कहीं से तो करना ही होगा। इसी कारण मैं यह आत्मकथा अपने जन्म से प्रस्तुत करूँगा जिससे कि घटनाओं की क्रमबद्धता बनी रहे।

कहने को तो यह आत्मकथा है किन्तु वास्तविकता यह है कि यह कथा मेरे आराध्य श्रीराम और वन्दनीया माता सीता के साथ घटित प्रसंगों का पुनर्पाठ है, जिसमें मुझ अकिंचन का यत्र-तत्र उल्लेख हो गया है। इस आत्मकथा को पढ़कर आपके मन में संशय उत्पन्न हो सकता है कि मैं नर हूँ या वानर? स्पष्ट कर दूं कि मैं नर नहीं हूँ किन्तु यह भी सत्य है कि मैं शाखाजीवी वानर भी नहीं हूँ। आकृति के आधार पर मैं निश्चित रूप से वानर सदृश हूँ किन्तु मनसा, वाचा, कर्मणा, मैं वानर नहीं हूँ। हाँ, यदा-कदा मेरे कृत्य वानर सुलभ लगते अवश्य हैं। थोड़ा और स्पष्ट करता हूँ। आप यूँ समझ सकते हैं कि मैं गुणों में उपदेवता श्रेणी का हूँ, अर्थात देवताओं से किंचित निम्न कोटि का। आकृति-प्रकृति में पशुवत, खान-पान में वन्य श्रेणी की तरह होने के बाद भी वस्त्र धारण, अध्ययन, अध्यापन, नित्यकर्म, स्नान, चिन्तन, वन्दन इत्यादि करने में मैं समर्थ हूँ। मैं अकेला ही इस कोटि का नहीं हूँ, मेरे कई साथी इसी कोटि के थे। जैसे मेरी आकृति-प्रकृति वानर स्वभाव की है ऐसे ही कतिपय उपदेवता अन्यान्य प्रकृति-आकृति के रहे हैं। ये आकृतिजन्य विशेषताएँ हैं। यह भी शंका आपके मन में उत्पन्न हो सकती है कि इन प्राणियों की मादाओं का आचार व्यवहार कैसा होगा? मैं यह उल्लेख करना चाहूँगा कि उपदेवता वर्गों की स्त्रियों का व्यवहार अपने पुरुष समुदाय से नितान्त भिन्न होता है। उपदेवताओं की स्त्रियाँ आकृति-प्रकृति में मानव नारियों की तरह व्यवहार करती हैं। इसी क्रम में मैं अपनी कथा को निरन्तरता प्रदान करते

हुए यही कह सकता हूँ कि मैं भवनों में रहा, मानव आहार भी मैंने ग्रहण किया, वेद-वेदांग का अध्ययन भी किया, सामान्य भाषा भी मैं बोल सका, उस भाषा को समझ भी सका किन्तु प्रकृतिवश मुझे वृक्षों की शाखाओं पर निवास करना, फल, फूल, मधु का स्वाद लेना, गिरि खण्डों और तरु शाखाओं को अस्त्र के रूप में प्रयोग करना ही अधिक रुचिकर लगा। ये गुण मेरे उपदेवता होने के प्रतीक हैं। जाम्बवान, सुग्रीव, अंगद आदि की आकृति-प्रकृति इसी सन्दर्भ में समझा जाना उचित होगा, अर्थात् पुच्छ युक्त किन्तु बल, बुद्धि, विद्या सम्पन्न, कामरूप और इच्छाधारी जीव। परिस्थिति के अनुरूप स्वरूप धारण करने में भी सक्षम उपदेवता।

आइए आरम्भ करता हूँ इस आत्मकथा को!

उन दिनों कृष्णा एवं कावेरी नदियों के मध्य दुर्गम सहयाद्रि पहाड़ी क्षेत्र में स्थित कंचनगिरि क्षेत्र अत्यन्त रमणीक स्थल था। यह क्षेत्र अत्यन्त मनोरम, हरीतिमा युक्त, स्वर्ग सदृश दर्शनीय तपोवन क्षेत्र था। मेरे पिता और वानर साम्राज्य के स्वामी महावीर केसरी का यह निवास स्थान था। उन दिनों मतंग और भारद्वाज ऋषियों के आश्रम भी यहीं थे। समीप में ही मण्डकर्णि मुनि का विख्यात पंचाप्सर तीर्थ था। महाराज केसरी का साम्राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण था, चहुँ ओर कुशलता व्याप्त थी। परन्तु इसके उपरान्त भी एक ही संताप महाराज केसरी को हमेशा घेरे रहता था। वह संताप था उनके कोई सन्तान न होना। अंजना से विवाह हुए दीर्घ अवधि व्यतीत हो चुका था किन्तु घर अभी भी किलकारियों से नहीं भरा था। वानर राज केसरी और उनकी पत्नी अंजना सन्तान की अभिलाषा में निरन्तर व्यथित रहते थे। संतान प्राप्ति हेतु पति-पत्नी अपने आराध्य शिव की पूजा-अर्चना में दिन-रात डूबे रहते थे। एक ही मनोरथ था उन दोनों का, सन्तान प्राप्ति।

'ॐ नमः शिवाय, ऊँ नमः त्रयम्बकाय, विश्वनाथाय, महेश्वराय' की ध्वनि से केसरी और अंजना का धाम गुंजायमान रहता था। मेरे माता-पिता ने सन्तान प्राप्ति हेतु कितने ही महर्षियों से निवेदन किया था। महर्षि भारद्वाज, महर्षि मतंग जैसे तपस्वियों ने मेरी माता अंजना को सेवा से अति प्रसन्न होकर यह परामर्श दिया कि वह शिव की आराधना करें। उनकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी।

महर्षि मतंग ने तो माता अंजना को यह भी सुझाव दिया कि वह पम्पा सरोवर से पूर्व दिशा में पचास योजन की दूरी पर स्थित नरसिंह आश्रम के निकट आकाशगंगा तीर्थ पर यदि तपस्या करें, तो उन्हें निश्चित ही सन्तान सुख प्राप्त होगा। मेरे पिता से आज्ञा लेकर माता अंजना नरसिंह आश्रम के निकट आकाशगंगा तीर्थ पर तपस्या में लीन हो गयी थीं। इस तपस्या का एक ही ध्येय था - सन्तान प्राप्ति।

माता की दीर्घकालिक एकनिष्ठ आराधना के पश्चात महादेव प्रकट हुए।

''वरं ब्रूहि, वरं ब्रूहि।'' महादेव माता अंजना की आराधना से प्रसन्न होकर बोले।

''प्रणाम आशुतोष, क्या माँगू आपसे? सब कुछ तो आप जानते ही हैं। कोई कमी नहीं है मेरे जीवन में। एक सन्तान के अतिरिक्त मुझे अब कुछ नहीं चाहिए।'' माता अंजना ने अपनी आँखें खोलते हुए महादेव से निवेदन किया था।

''मैं तुम्हारी आराधना से अत्यन्त प्रसन्न हूँ अंजना। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें शीघ्र ही एक अत्यन्त पराक्रमी पुत्र होगा। तुम्हारा पुत्र असाधारण गुणों वाला होगा। वह अत्यन्त विलक्षण होगा। तुम्हारे इस पुत्र

का व्यक्तित्व अद्वितीय होगा। तुम्हारा पुत्र पृथ्वी, पाताल, आकाश, अंतरिक्ष का संधान कर सकने में सक्षम होगा। उसके समान योद्धा, गुणज्ञ, सेवक, भगवद्भक्त तीनों लोकों में न होगा। वह मेरे ही अंश से उत्पन्न होगा। उसे इसलिए शंकर सुवन के नाम से भी जाना जायेगा। वह वेद, वेदांग, शास्त्रों का ज्ञाता होगा। वह मेरे एकादश रूपों में से ही एक होगा अर्थात 'एकादश रुद्र'।'' कहकर महादेव मुस्कराते हुए अंतर्ध्यान हो गए।

''ॐ नमः शिवाय'' कहते हुए माता अंजना पुनः तपार्थ बैठ गयीं। महादेव के प्राकट्य से माता अंजना को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई थी।

माता अंजना की आँखों में कुछ गर्म सी बूंदें ठहर गयी थीं। ये आँसू संतुष्टि के पश्चात् मिले प्रसन्नता के आँसू तो थे ही, साथ ही थे कुछ अपेक्षित की अभिलाषा में हर्ष की मौन अभिव्यक्ति।

समय तो समान गति से चलता रहता है। समय की गति से कौन कितना प्रभावित होता है यह सापेक्षिकता पर निर्भर करता है। इधर माता अंजना तपस्यारत थीं और उधर सुदूर सरयू के तट पर स्थित अयोध्या में कौशल नरेश दशरथ के यहाँ भी पुत्रेष्टि यज्ञ चल रहा था। इधर माता अंजना और पिता केसरी पुत्र प्राप्ति के लिए प्रयासरत थे और उधर राजा दशरथ और उनकी तीन रानियाँ। राजा दशरथ के यहाँ यज्ञ समाप्त हुआ, प्रसाद स्वरूप खीर वितरण हुआ।

''कोसलाधीश, इस यज्ञ के समापन के उपरान्त प्रसाद के रूप में खीर को ग्रहण कीजिए और अपनी तीनों रानियों में वितरित कीजिए। इस प्रसाद को ग्रहण करने के उपरान्त ही तीनों रानियों को पुत्र उत्पन्न होंगे,"राजा दशरथ के गुरू वशिष्ठ ने कहा।

राजा दशरथ राजगुरू वशिष्ठ की आज्ञा का पालन कर ही रहे थे कि मंझली रानी सुमित्रा को खीर का द्रोण देते समय अचानक एक चील लपकी उस द्रोण पर। पलक झपकते ही उस द्रोण को अपने चोंच में दबाकर उड़ गयी थी आकाश में। सब देखते रह गए थे उस चील को। चील उड़ते-उड़ते आँखों से ओझल हो गयी। चील के इस कृत्य पर भला क्या कर सकते थे राजा दशरथ और उनकी प्रतापी सेना?

चील सीधे उड़कर पहुँची कंचनगिरि पर। यहीं माता अंजना तपस्यारत थीं। चील ने अपनी चोंच खोली तो द्रोण आ गिरा उनकी अंजलि में। इसखीर को प्रसाद स्वरूप ग्रहण कर लिया मेरी माता ने। यही खीर उनके गर्भाधान का भी कारण बनी थी। क्या अद्भुत संयोग था यह!

पुनः वापस आता हूँ अपने जन्म की कहानी पर।

मेरे जन्म होने का एक कारण यह भी था कि जब माता अंजना तपस्यारत थीं तभी वायु के एक तेज झोंके से उनके वस्त्र उड़ने लगे। अव्यक्त रूप से वायुदेव ने मेरी माता की देह को स्पर्श कर लिया था।

''कौन मेरे पतिव्रत को भंग करना चाहता है? किस दुष्टात्मा ने मुझे स्पर्श किया है?'' इस संस्पर्श से रूष्ट होते हुए माता अंजना ने क्रोध के साथ प्रश्न किया।

''भयमुक्त रहो अंजना। मैं पवन देव हूँ। समूचे जगत को प्राण वायु प्रदान करने वाला। मैंने तुम्हारा पतिव्रत्य नष्ट नहीं किया है, मात्र मानसिक संस्पर्श किया है तुम्हारा। इस संस्पर्श से तुम शीघ्र ही एक महातेजस्वी और महाबली पुत्र की माता बनोगी। यह संतान जो तुमसे उत्पन्न होगी उसे 'पवनसुत' का नाम मिलेगा। यह पुत्र मेरे समान ही बुद्धिसम्पन्न, महासत्व, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी और महावेगशाली होगा।'' वायुदेव ने सहज भाव से कहा था।

इस प्रकार इन संयोगों से वानर जाति में मेरा जन्म हुआ। वैसे एक बात कहूँ, ये सब अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए कह रहा हूँ वरना तो मैं अमर हूँ, जन्म और मृत्यु काल रहित।

माता अंजना और पिता केसरी ने मेरे जन्म के उपलक्ष्य में महोत्सव का आयोजन किया। इस आयोजन में सहस्रों ऋषियों और मुनियों को आमन्त्रित किया गया। इन सिद्ध पुरुषों ने मुझे अनन्त आशीर्वाद प्रदान किए। मेरा नामकरण भी हुआ। कई नाम मुझे मिले। माता के नाम पर मेरा नाम आंजनेय रखा गया अर्थात् अंजना का पुत्र। पिता केसरी के नाम पर मुझे केसरीनन्दन कहा गया। केसरीपुत्र होने के कारण मुझे केसरीसुत, केसरीप्रिय जैसे नामों से भी अलंकृत किया गया। मुझे वायुदेव का पुत्र भी माना जाता है। अतएव मुझे वायुपुत्र, पवनपुत्र, मारुति इत्यादि नामों से भी पुकारा गया। शंकर सुवन तो मैं था ही। इस प्रकार भिन्न-भिन्न नामों से मुझे पुकारा गया।

तो यह थी मेरे जन्म की कहानी। यह अलग बात है कि मेरे जन्म से जुड़ी कई कथाएँ कालान्तर में विद्वानों द्वारा व्याख्यायित की गईं, लेकिन किसी संतान के जन्म की प्रामाणिक कथा तो उसकी माँ ही सर्वश्रेष्ठ रूप में बता सकती है। मेरी माँ ने मेरे जन्म की जो कथा मुझे सुनाई थी उसी को मैंने सर्वथा सत्य माना और वह कथा मैंने भी आपको अति संक्षिप्त रूप में सुना दी। यद्यपि माँ हँसते-हँसते मुझसे कई बार कहती थीं कि ''आंजनेय, मैं तो पूर्वजन्म में देवाधिपति इन्द्र के दरबार की अप्सरा थी और मेरा नाम पुंचिकस्थला था वह तो तुझे जन्म देने के लिए मुझे वानरी बनना पड़ा।''

यह कहते-कहते वे ठहाका मार कर हँस पड़ती थीं। वह ठिठोली थी या सत्य, मैं नहीं जानता।

मुझे स्मरण आता है कि जब प्रभु श्रीराम की आज्ञा के अनुसार हमारा दल माता सीता की खोज में समुद्र के तट पर किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा हुआ था और समुद्र लंघन का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था तो ऐसे में इस दुर्गम कार्य को करने के लिए मुझे ही चुना गया था। रीछ प्रवर जाम्बवान जी ने मुझे प्रोत्साहित करते हुए मेरी शक्तियों को जाग्रत करने के उद्देश्य से मेरे जन्म के विषय में बताया था।

''हनुमान, देवराज इन्द्र के दरबार में एक अत्यन्त रूपसी अप्सरा थी, पुंचिकस्थला। किसी कारण इन्द्र ने रूष्ट होकर उस अप्सरा को वानरी के रूप में जन्म लेने का शाप दे दिया था। वह अप्सरा अन्जना नाम से वानरराज कुंजर की पुत्री के रूप में जन्मी थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी और इच्छाधारी रूप धारण कर सकती थी। अपने सौन्दर्य के कारण वह सर्वत्र विख्यात थी। कालान्तर में उसका विवाह वानरराज केसरी के साथ हुआ। एक दिन उस वानरी अप्सरा अन्जना पर वायुदेवता मुग्ध हो गए और उस अनिंद्य सुन्दरी को संस्पर्श कर लिया। अंजना महान पतिव्रता थीं। क्रोधित अन्जना ने वायुदेव को ऐसा करने से रोका। अन्जना की बात सुनकर वायुदेव ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि यह अलिंगन अव्यक्त रूप से किया गया है अतएव पतिव्रत भंग होने का प्रश्न ही नहीं उठता। वायुदेव ने इसे मानसिक संस्पर्श बताते हुए कहा कि इस संस्पर्श से तुम्हें वीर्यवान, महासात्विक, वेगशाली महाबली, पराक्रमी, बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा तुम अंजना के वही प्रतापी पुत्र हो हनुमान।'' रीछ प्रवर जाम्बवान ने मुझे मेरे जन्म की कथा सुनाते हुए कहा था।

यह कथा मैंने ही नहीं, वहाँ उपस्थित मेरे कपि मित्रों ने भी सुनी थी।

''हनुमान, तुम्हें ज्ञात ही है कि पुंजिकस्थला का शाब्दिक अर्थ होता है-दिशा या अग्नि की सेना। दिशाएँ

अनन्तता का प्रतीक हैं। पुंजिकस्थला और वायु के संस्पर्श का अर्थ है अग्नि और वायु का मिलन। इस मिलन का श्रेष्ठतर उदाहरण ही तो तुम हो हनुमान। तुममें अग्नि का तेज और संहारक शक्ति के साथ वायु का प्रबल वेग तथा पराक्रम निर्विवाद रूप से मिश्रित है।'' जाम्बवान ने यह कहकर जब अपनी बात समाप्त की तो मैं उनके समक्ष अत्यन्त विनीत भाव से झुक गया था।

माँ बताती थीं कि मेरा जन्म सूर्योदय के समय हुआ था। जब मैं इस संसार में आया तो मैं नग्न नहीं था। मेरी देह पर सुनहरे रोम थे। मेरी अंग कान्ति पिंगल वर्ण की थी। देह पर दर्शनीय आभूषण सुसज्जित थे। मैंने कसे हुए लाल लंगोट, मूंज के जनेऊ और कुण्डल के साथ जन्म लिया था। मेरा मुख लाल था। मेरे नेत्र भूरे थे। मुख में श्वेत दन्त पंक्ति थी और दाढ़े तीखी थीं। जब मैं हँसता था तो दन्त पंक्ति बाहर आ जाती थी। मेरे शरीर का मध्य भाग और कटि प्रदेश पतला था और कौपीन युक्त था। मेरे होंठ बिम्बफल के समान उद्दीप्त लाल रंग के थे और आकार में छोटे थे। मेरी पूँछ लाल रंग की थी। माँ मुझे मणिग्रीवा भी कहती थीं, क्योंकि मेरी ग्रीवा छोटी और मोटी थी। जब मैं विश्राम करता था तो बाँह के मूल भाग को तकिया बनाकर उस पर अपनी ग्रीवा रख लेता था। मैं आजानुबाहु था। माँ ने बताया था कि गरुड़ के दोनों पंखों में जितना बल था, उतना ही मेरी भुजाओं में था। माँ मुझे पवनपुत्र कहकर पुकारती थीं। कभी-कभी वे मुझे प्यार से वातात्मज, केसरीनन्दन, मारुति, वायुनन्दन भी कहकर पुकारती थीं। मुझे माता की गोद में बैठकर लड्डू खाने में अत्यन्त आनन्द आता था।

मुझे शंकर सुवन के नाम से भी कतिपय स्थानों पर पुकारा गया। शंकर सुवन के विषय में भी मुझे कालान्तर में कतिपय वरिष्ठ कपियों से सुनने को मिला। मुझे बताया गया कि एक बार भगवान विष्णु के मोहिनी स्वरूप को देखकर भगवान शिव कामासक्त हो गए। इसी प्रक्रिया में वे स्खलित हो गए। ऋषियों ने उनके वीर्य को एक पत्ते पर रख लिया और माता अन्जना के गर्भ में उस वीर्य का आधान कर दिया और इस प्रकार भगवान शिव और माता अन्जना के संयोग से मेरा जन्म हुआ। यद्यपि मैं प्रामाणिकता के साथ नहीं कह सकता कि इसमें कितनी सत्यता है किन्तु अपने नामकरण से जुड़े विभिन्न प्रसंगों के मध्य इस प्रसंग का भी उल्लेख कर दिया है।

तो ये थीं मेरे जन्म से जुड़ी हुईं विभिन्न कथाएँ, मेरे नामकरण से जुड़ी हुईं धारणाएँ।

घटनाएँ तो जीवन का अभिन्न हिस्सा होती हैं। घटनाओं का एकीकरण ही तो जीवन है। इसी क्रम में एक घटना का वर्णन मैं यहाँ करना चाहूँगा। यह घटना मेरे बाल्यकाल की है।

प्रातः काल का समय था। वातावरण में हल्की-हल्की हवा चल रही थी। माता अंजना घर में नहीं थीं। पिता स्नान-ध्यान के लिए सरोवर के समीप गये हुए थे। अपने बड़े से घर में मैं अकेला यत्र-तत्र विचरण कर रहा था। सतत् विचरण के उपरान्त मुझे क्षुधा का अनुभव हुआ। मुझे ऐसा लगा कि यदि शीघ्र ही कुछ खाने को न मिला तो क्षुधा मेरे प्राण हर लेगी। तभी मेरी नजर खिड़की के पार गई। खिड़की के बाहर लाल रंग का चमकता हुआ कोई सुन्दर-सा मंडलाकार फल मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था। मैं क्षुधा से व्याकुल था। उस सुन्दर से फल को खाने के लिए मैं जैसे ही उस फल पर झपटा, मुझे अनुभव हुआ कि उस फल को मैं जितना समीप समझ रहा था वह वास्तव में उतना समीप था नहीं। होता भी कैसे वह फल था भी तो नहीं। वह तो सूर्य देवता थे जो आसमान में चमक रहे थे। प्रातः कालीन आभा के चलते उनका स्वरूप

किसी बड़े-से लाल रंग के फल की तरह लग रहा था। जैसे ही मैं उस लाल इकाई की तरफ बढ़ा तो मुझे लगा कि इस फल को पकड़ पाना आसान नहीं है। मैं जैसे-जैसे उस फल की ओर बढ़ रहा था, मुझे अनुभव हो रहा था कि वह लाल फल मेरे अनुमान से बहुत दूर है। मैंने उसे पकड़ कर खाने का निश्चय किया और पूरे मनोयोग से उस फल की तरफ बढ़ चला। मैं जैसे-जैसे उस फल की ओर बढ़ता जा रहा था, वह फल भी समानुपातिक ढंग से बढ़ता जा रहा था। मैं उस फल को पकड़ने के लिए जैसे-जैसे अपने आकार में वृद्धि कर रहा था, वह पिण्ड भी उतना ही विशालकाय होता जा रहा था। उस फल को पकड़ने के प्रयास में मैं पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से बाहर आ गया था। अब मैं भार शून्यता का अनुभव कर रहा था। मेरी क्षुधा बढ़ती जा रही थी। मैं जैसे-जैसे उस पिण्ड की तरफ बढ़ रहा था, मुझे उष्णता का अनुभव हो रहा था। मैं येन केन प्रकारेण उस लाल पिण्ड को खा जाना चाहता था। अचानक मैंने हाथ बढ़ाया और उस लाल पिण्ड को पकड़कर तत्काल अपने मुँह में भर लिया। जैसे ही मैंने इस पिण्ड को मुँह में रखा, पृथ्वी पर गहन अंधकार छा गया।

पहले तो प्राणियों को लगा कि यह खग्रास सूर्यग्रहण है। उस दिन अमावस्या तिथि भी थी और सूर्य को ग्रहण भी लगना था। लोगों ने थोड़ी देर तो प्रतीक्षा की किन्तु जब अन्धकार की समय सीमा बढ़ने लगी तो पृथ्वी पर हाहाकार मच गया। प्राणियों को लगा कि इस बार राहु सर्वदा के लिए सूर्य को खा गया। अनन्त से प्रतीत हो रहे इस अन्धकार को समाप्त करने के लिए धरा के प्राणियों ने देवाधिपति इन्द्र का आह्वान किया। देवराज इन्द्र तक जब यह करुण पुकार पहुंची तो उन्होंने अपना वज्र, ग्रहण को लक्षित करके चला दिया। वह शक्तिशाली वज्र सीधा मेरी हनु (ठुड्डी) पर आकर लगा। यह प्रहार इतना भयंकर था कि मेरी हनु टूट गई और मैं संज्ञा शून्य होकर गिर पड़ा। मुँह से लाल पिण्ड बाहर आ गया और मैं सीधे अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आकर गिरा। मेरी हनु से अविरल और अविराम रक्त बह रहा था।

वायुदेव ने जब मुझे वज्राघात से संज्ञा शून्य देखा तो वे इन्द्र पर अत्यन्त कुपित हुए। अपने पुत्र पर हुए वज्राघात से क्षुब्ध होकर वायुदेव ने क्रोधवश अपनी गति रोक दी। लोक-परलोक में सर्वत्र हाहाकार मच गया। प्राणियों की साँस अवरुद्ध होने लगी। विद्यमान संकट से भयभीत होकर इन्द्र सीधे ब्रह्मा जी के पास भागे, सारा वृतान्त कह सुनाया। इसके पश्चात ब्रह्मा जी अन्य देवताओं सहित वहाँ पहुँचे जहाँ मैं मूर्छित पड़ा हुआ था। ब्रह्मा जी ने मुझको प्यार से दुलराते हुए कमल स्पर्श दिया। कमल के स्पर्श से मेरे शरीर के रोम-रोम झंकृत हो उठे और मैं चेतना में लौट आया। मुझे जीवित देखने के उपरान्त ही वायुदेव ने पुनः बहना आरम्भ किया।

माता बताती थीं कि वायुदेव के अनुरोध पर ब्रह्मा जी ने स्वयं तो वरदान दिए ही, अपितु पधारे हुए अन्य देवताओं से भी मुझे आशीर्वचन देने के लिए अनुरोध किया।

''इस बालक को कभी ब्रह्मशाप नहीं लगेगा। ब्रह्मास्त्र से इसका कोई भी अंग कभी छिद्रित नहीं किया जा सकेगा। यह बालक ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा।'' ब्रह्मा जी ने मुझे वरदान दिया।

ब्रह्मा जी का अनुसरण करते हुए उपस्थित अन्य देवताओं ने भी मुझे वरदान दिये।

देवराज इंद्र ने प्रसन्नतापूर्वक मेरे कंठ में कमलों की माला पहनाकर कहा, ''मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र द्वारा इस बालक की हनु टूट गई है, इसलिए इस कपिश्रेष्ठ का नाम

हनुमान होगा। इसके अतिरिक्त भविष्य में इस बालक पर मेरे वज्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसका शरीर मेरे वज्र से भी अधिक कठोर होगा। इसे वज्रांग नाम से भी जाना जाएगा।''

उपस्थित सूर्यदेव ने कहा, ''मैं इसे अपने तेज का शतांश प्रदान करता हूँ। साथ ही उचित समय आने पर इसे शिक्षा देकर शास्त्रमर्मज्ञ भी बना दूंगा। यह अद्वितीय विद्वान और श्रेष्ठ वक्ता होगा।''

वरुण देव ने कहा, ''मेरे पाश और जल से यह बालक सदा सुरक्षित रहेगा। यह बालक अमरत्व को प्राप्त करेगा।''

यम देव बोले, ''यह निरोग और मेरे दण्ड से सदा अवध्य रहेगा।''

यक्षराज कुबेर ने कहा, ''युद्ध में इसे कभी विषाद नहीं होगा। मेरी गदा से यह सुरक्षित तो रहेगा ही और यक्ष, राक्षसों से भी यह बालक कदापि पराजित नहीं हो सकेगा।''

भगवान शंकर ने वर प्रदान किया, ''यह बालक मुझसे और मेरे आयुधों यथा शूल और पाशुपत आदि से सदा अवध्य रहेगा।''

विश्वकर्मा बोले, ''यह बालक मेरे द्वारा निर्मित समस्त दिव्य अस्त्रों से सदा सुरक्षित रहकर चिरायु होगा।''

''मारुत, तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओं का नाश करने वाला और मित्रों का सर्वथा सहयोग करने वाला होगा। इसे युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकेगा। यह बालक ब्रह्मास्त्र, नागपाश, पाशुपतास्त्र आदि से अभेद्य रहेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। यह अत्यन्त यशस्वी होगा और अत्यन्त अद्‌भुत एवं रोमांचकारी कार्य करेगा, ''ब्रह्माजी ने प्रस्थान करते समय वहाँ उपस्थित वायुदेव से कहा।

माँ अंजना ने कुछ दिनों तक मेरी सेवा की। कुछ समय पश्चात मैं सामान्य हो गया। वज्र द्वारा हनु के किंचित टेढ़ा हो जाने के कारण अब मेरा नया नाम हनुमान हो गया था। मुझे अधिकांश साथी और परिजन हनुमान कहकर ही पुकारते थे। अब मैं पुनः अपनी मूल प्रकृति से जुड़ने लगा था।

अरण्यवासी होने के कारण मेरे आचार-व्यवहार में शैशवावस्था से ही खिलंदडपन था। बाल सुलभ क्रीड़ाओं में भी बल का प्रयोग मेरे लिए सामान्य बात थी। निडरता तो मेरे चरित्र में थी ही। बड़े-बड़े जानवरों के साथ मनोरंजक क्रीड़ाएँ करना मुझे अत्यन्त प्रिय था। हाथी की पूँछ पकड़कर विपरीत दिशा में खींच लेना, शेर-बाघ को गुर्राते हुए उन्हें दौड़ा लेना, भालू और कपियों की पीठ पर धौल जमा देना, एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर कूदकर पहुँच जाना इत्यादि मेरी प्रिय क्रीड़ाएँ थीं। इस अरण्य में पशु और वनस्पतियाँ तो प्रचुर मात्रा में थी ही, बड़ी संख्या में आश्रम भी थे जिनमें ऋषि, मुनि, साधक आदि रहते थे। यद्यपि मेरे संस्कार किसी को परेशान करने की आज्ञा नहीं देते थे किन्तु वानरीय प्रवृत्तियों के कारण कभी-कभी ऐसी त्रुटियाँ हो ही जाती थीं जिनसे दूसरों को परेशानी उत्पन्न हो जाती थी। अपने साथियों को यदि खेलते-खेलते मैं उनको धीरे से भी धक्का देता था तो वे मीलों दूर जा गिरते। कभी-कभी वृक्षों की शाखों को पकड़कर मैं इस तरह झकझोर देता कि वे जड़ से उखड़ जाते। मैं भारी-भरकम शिलाओं को अपने हाथों में उठाकर घुमाकर फेंकता तो जिस दिशा में वह पत्थर जाता उधर से थोड़ी देर में बचाओ-बचाओ की ध्वनियाँ सुनाई पड़तीं।

मैं तपस्वियों के आश्रम में बिना अनुमति लिए

प्रवेश कर जाता। इस अरण्य में बड़ी संख्या में तपस्वी एवं साधक रहते थे। इनमें अधिकांश ऋषिगण भृगु एवं अंगिरा वंश के थे। इन साधकों को देखकर मुझे भी यज्ञ, हवन करने की इच्छा प्रबल हो जाती। मैं उनके यज्ञ पात्रों और पूजन सामग्री आदि को उठाकर पेड़ पर चढ़ जाता। मेरे इस कृत्य से बहुधा यज्ञ पात्र टूट जाते और पूजन सामग्री इत्यादि बिखर जाती। अन्य पदार्थों की क्षति भी हो जाती थी। मेरी उच्छृखलता बढ़ती जा रही थी। माता अंजना को मेरे कृत्यों के कारण उलाहने दिए जाते। मुझे बहुत से देवी, देवताओं, ऋषियों, मुनियों ने वरदान दे रखे थे, अतएव किसी प्रकार की क्षति मुझे नहीं पहुँचती। मेरी अठखेलियों पर अंकुश लगाये जाने के उद्देश्य से अरण्यवास कर रहे कुछ तपस्वियों ने यह प्रस्ताव किया कि क्यों न अंजनीपुत्र से सारे वरदान वापस ले लिए जाएँ? कुछ तपस्वी इस प्रस्ताव से सहमत थे तो कुछ असहमत। कतिपय भविष्य दृष्टा साधक यह देख पा रहे थे कि मैं भविष्य में कुछ अद्‌भुत कार्य करने वाला हूँ, अतएव वे मेरे बाल सुलभ कृत्यों के लिए इस वृहद दण्ड को देने के लिए सहमत नहीं थे। अंततः विचार-विमर्श के बाद मुझे इतना ही शाप दिया गया कि अब अंजनी पुत्र अपनी शक्ति और सामर्थ्य को भूल जाएँगे। जब कोई उन्हें उनकी शक्ति और सामर्थ्य का स्मरण दिलाएगा तभी उन्हें अपनी शक्ति का स्मरण होगा।

उन तपस्वी एवं साधकों द्वारा दिये गये शाप के प्रभाव से मेरा जीवन पूर्णतया सामान्य हो गया। वैसे माँ इसे शाप नहीं, बल्कि ऋषि एवं मुनियों द्वारा दिया गया ज्ञान दान मानती थीं। उनका मानना था कि इस ज्ञान दान के कारण मेरी सगुणता और सबलता सही दिशा में बढ़ चली थी। मेरा तेज एवं ओज अब सामान्य हो रहा था। मेरे अन्दर की बाल उच्छृखलताएँ पूर्णतया समाप्त हो गई थीं। अब मैं काफी शान्त स्वभाव वाला हो गया था। अब मुझे क्रीड़ाओं के स्थान पर घर में बैठकर शान्त भाव से चिन्तन एवं मनन करना ज्यादा सुहाता। माता के प्यार और उनकी सेवा में मेरा जीवन व्ययतीत हो रहा था। अब मैं अन्य कपि किशोरों की भाँति ही आश्रमों में अत्यन्त शान्त भाव से विचरण करता। मेरे इस परिवर्तित मृदुल व्यवहार से ऋषि, मुनि, तपस्वी एवं साधक सभी प्रसन्न थे।

मैं धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। मेरी आयु अब विद्याध्ययन हेतु हो रही थी। मैं विद्याध्ययन योग्य हुआ तो माता अंजना ने कहा, ''वत्स अब तुम्हारी आयु विद्याध्ययन हेतु उपयुक्त है। मेरी इच्छा है कि भगवान सूर्य तुम्हें विद्यादान दें। वे तुम्हें विद्यादान करने का आश्वासन तो पूर्व में ही दे चके हैं। तुम उन्हीं के पास जाकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करो।''

''लेकिन माँ मैं उन तक पहुँचूंगा कैसे?'' मैंने बाल सुलभ प्रश्न किया।

''तुम्हारे लिए सूर्यदेव कितनी दूर हैं। अब तो तुम बड़े हो गए हो, जब तुम छोटे थे, तुम तो तभी सूर्यदेव के पास जा चुके हो। केसरीनन्दन, संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जो तुम न कर सको।'' मेरी माता ने मुझे अपना बल स्मरण कराया।

फिर क्या था अगले ही पल मैंने अपना स्वरूप विस्तार किया, आकाश में उछाल मारी, और वायु पुत्र होने का लाभ उठाते हुए सीधे सूर्यदेव की ओर उड़ चला। मैं सीधे सूर्यदेव के निकट पहुँचा। शिष्टाचार स्वरूप मैं सूर्यदेव के सारथी अरुण से मिला। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और अपने आने का प्रयोजन बताया। उन्होंने मुझे भगवान सूर्यदेव से मिलवा दिया। मैंने विनम्रपूर्वक भगवान भाष्कर के चरणों में प्रणाम किया।

''वत्स हनुमान, यहाँ कैसे?'' सूर्यदेव ने मेरी ओर देखते हुए पूछा।

''प्रभु, शैशव काल में आपने मुझे विद्यादान का आश्वासन दिया था। मेरी आयु विद्याध्ययन हेतु उपयुक्त हो जाने पर मेरी माता ने मुझे आपके चरणों में विद्याध्ययन करने के लिए भेजा है। आप कृपापूर्वक मुझे ज्ञान प्रदान करें।'' मैंने अत्यन्त नम्र वाणी से उत्तर दिया।

''वत्स, यह तो उचित कहा तुमने, किन्तु मेरी स्थिति बडी विचित्र है। मुझे अपने रथ पर बैठकर निरन्तर दौड़ते रहना पड़ता है। रथ से उतरना भी मेरे लिए सम्भव नहीं। ऐसी दशा में मैं तुम्हें शास्त्रों का ज्ञान कैसे कराऊँगा? तुम्हीं सोचकर बताओ, कि क्या किया जाए? तुम्हारे जैसे आदर्श शिष्य को स्वीकार करने में तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।'' भगवान आदित्य बोले।

भगवान दिवाकर का तर्क सर्वथा उचित था, किन्तु मुझे तो उनका शिष्यत्व ग्रहण करना ही था।

''प्रभु, आपके वेगपूर्वक रथ के चलने से मेरे अध्ययन में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। मैं आपके पार्श्व में बैठ जाऊँगा और रथ के वेग के साथ ही आगे बढ़ता रहूँगा। हाँ, आपको किसी प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिए।'' मैंने विनम्रता से कहा।

भगवान आदित्य ने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया था। शिक्षा प्रारम्भ हो गयी। अविराम अध्ययन आरम्भ हो चुका था। दिन और रात्रि का बोध समाप्त हो चुका था। सूर्यदेव वेदादि, शास्त्रों, समस्त विद्याओं के अंगोपांग एवं उनके रहस्य जितनी शीघ्रता से बोल सकते थे, बोलते चले जाते थे। श्रुति आधारित ज्ञान दान की प्रक्रिया गतिमान थी। मैं शांत भाव से उन्हें श्रवण करता जा रहा था। प्रश्न, उत्तर, शंका व समाधान की आवश्यकता ही नहीं थी। भगवान सूर्य ने मुझे अल्पावधि में ही समस्त वेदादि, शास्त्र, उपशास्त्र एवं विद्याएँ सुना दी। सूर्यदेव ने मुझे शास्त्रों, व्याकरण, कला, संगीत, युद्ध कौशल, वाक्पटुता का भी ज्ञान दिया। चारों वेद, छः दर्शन. वेदांग आठों सिद्धियों, नवनिधियों इत्यादि में उन्होंने मुझे पारंगत किया। उनके साथ रहते हुए मैंने सूत्र, वृत्ति, महाभाष्य के साथ अन्यान्य शास्त्रों का भी अध्ययन किया। इस प्रकार विद्याध्ययन सम्पन्न हुआ। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मैं इन विद्याओं में पारंगत हो गया किन्तु अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैंने सीखने का प्रयास अवश्य किया।

सूर्यदेव ने विद्यादान करने के पश्चात् मुझे वापस प्रस्थान करने का आदेश दिया।

''प्रभु, मैं अल्पज्ञानी, अल्प शक्ति वाला कपि हूँ। मैं आपको क्या दे सकता हूँ? मैं तो आपकी सेवा करने में भी समर्थ नहीं हूँ किन्तु मैं ग्लानि से बचने के लिए आपसे गुरू दक्षिणा लेने हेतु निवेदन करना चाहता हूँ। प्रभु, गुरू दक्षिणा के रूप में आप अपना अभीष्ट व्यक्त करें।'' विदाई के क्षणों में मैं सूर्यदेव को प्रणाम करके बोला।

''हनुमान, मैं तुम्हारे श्रद्धा भाव और विनम्रता से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। मुझे तो कुछ नहीं चाहिए, किन्तु यदि मुझे गुरू दक्षिणा के रूप में कुछ देना ही चाहते हो तो तुम मेरे अंश से उत्पन्न कपिराज बालि के छोटे भाई सुग्रीव की रक्षा का वचन दो।'' सर्वथा निष्काम सूर्यदेव ने अपनी अपेक्षा व्यक्त की।

''आज्ञा शिरोधार्य है। मेरे रहते सुग्रीव का बाल भी बांका नहीं हो सकेगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'' मैंने अपने गुरू के समक्ष प्रतिज्ञान किया।

''तुम्हारा सर्वविधि मंगल हो। प्रस्थान करो हनुमान, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।'' भगवान सूर्यदेव ने

आशीर्वाद दिया। मैंने गुरूदेव के चरणों में साष्टांग प्रणाम निवेदित किया। इसके उपरान्त मैं वापस अपने घर की ओर चल पड़ा।

मैं कंचनगिरि लौटकर अति प्रसन्न था। वापस आने के पश्चात् मैंने अपने माता-पिता के चरणों में मस्तक रखा। माता-पिता के हर्ष की सीमा न थी। विद्या ज्ञान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में मेरे माता-पिता ने अद्‌भुत उत्सव मनाया। कंचनगिरि पर हर्ष और उल्लास के समारोह का इतना सुन्दर और विशाल आयोजन इसके पूर्व कभी किसी ने नहीं देखा था। सम्पूर्ण कपि समुदाय आनन्द-विभोर था। सबने मुझे अपने अंतःहृदय से आशीर्वाद दिया।

माता अंजना और पिता केसरी मुझे बहुत प्यार करते थे। मैं अपने माता-पिता के पास कुछ समय रुका। मैं अनुभव कर रहा था कि मेरे मन में एक व्यग्रता जन्म ले रही थी। मैं अपने माता-पिता के पास रहते हुए भी अन्दर से सन्तुष्ट अनुभव नहीं कर रहा था। अब मेरा मन कंचनगिरि में नहीं लग रहा था। सम्भवतः इसका कारण यह था कि मैंने सूर्यदेव को सुग्रीव की रक्षार्थ वचन दे रखा था। कुछ दिनों बाद अपनी इच्छा से मैंने पिताजी को अवगत कराया कि मैं सुग्रीव के पास जाना चाहता हूँ। यद्यपि माता-पिता चाहते थे कि मैं उनके पास ही रहूँ किन्तु भगवान सूर्य की इच्छा का पालन करना जहाँ मेरे लिए आदेश था वहीं उनके लिए प्रतिबद्धता। भगवान सूर्य को दिए गये वचन का पालन करने के लिए मैंने सुग्रीव के पास जाने का निर्णय लिया। सुग्रीव किष्किन्धा में अपने भाई बालि के पास रहते थे। भारी मन से मेरे माता-पिता मुझे सुग्रीव के पास छोड़ने को तैयार हो गए। मेरे पिता मेरी प्रतिबद्धता का आदर रखते हुए मुझे किष्किन्धा ले गये। किष्किन्धा नरेश बालि ने हमारा स्वागत किया। बालि वानर और रीछ जातियों के राजा थे। मेरे पिता केसरी से उनका पुराना स्नेह सम्बन्ध था। मेरे पिता ने मुझे किष्किन्धा नरेश बालि को सौंप दिया। बालि ने मुझे अपनी राजसभा का सचिव बना लिया। मैं बालि की सभा में कार्यरत अवश्य था किन्तु मुझे किष्किन्धा नरेश के अनुज सुग्रीव से अधिक स्नेह था। वे मेरे मित्र बन गये थे।

किष्किन्धा राज्य आने के पश्चात अब मेरी प्रतिबद्धता सुग्रीव के साथ थी। गुरू दक्षिणा में दिये गये वचनों के अनुसार मैं सुग्रीव के साथ ही रहता था। उन्होंने मुझे अपना सचिव बना लिया था। मेरा कार्य उन्हें मंत्रणा देना तथा सचिवीय सहायता प्रदान करना था।

माता-पिता से अलग हो जाने की पीड़ा मुझे कभी-कभी परेशान करती। मैं विचार करता कि मेरा दायित्व क्या था? क्या मुझे अपने माता-पिता के पास उनकी सेवा के लिए नहीं रहना चाहिए था? कई प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उभरते थे। मेरे पिता, महाराज केसरी मुझे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते थे, क्या मुझे उनकी इच्छा का पालन नहीं करना चाहिए? मेरी माँ ने दीर्घावधि तक आराध्यों की पूजा-अनुष्ठान करने के बाद मुझे प्राप्त किया था, क्या मुझे उनकी सेवा के लिए कंचनगिरि पर ही नहीं रुक जाना चाहिए था? ऐसे कई प्रश्न मुझे घेरते लेकिन अगले ही पल मैं स्वयं ही इन प्रश्नों का निराकरण कर लेता। मुझे अन्दर से कोई कहता आंजनेय तुम्हारा जन्म तो अपने आराध्य की सेवार्थ हुआ है। ये राज-पाट, ये भौतिक सम्बन्ध इन सबसे तुम बहुत ऊपर उठे हुए हो।''

वस्तुतः मुझे सेवा करने में जो आनन्द प्राप्त होता था, वह अवर्णनीय है। सुग्रीव के साथ रहकर मैं उनकी सेवा करता। सुग्रीव की सेवा करते हुए भी मुझे यह अनुभव होता रहता कि मेरा अभीष्ट कुछ और है, मेरा आराध्य तो कोई और है। बालि अपने अनुज सुग्रीव को

पुत्रवत स्नेह करते थे। इसलिए मैं जब सुग्रीव के समीप उनका सहयोगी बनकर रहने लगा तो बालि ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि ऐसा करने के लिए उन्होंने मुझे प्रोत्साहित ही किया।

बालि और सुग्रीव में बड़ी आत्मीयता थी। दोनों एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे। बालि सुग्रीव को प्राणों से अधिक चाहते थे। सुग्रीव भी बालि को पितातुल्य मानते थे। दोनों भाई भोजन, शयन, क्रीड़ा, आखेट आदि एक साथ करते थे। वे दोनों प्रायः साथ ही रहते थे। पिता ऋक्षरजा के दिवंगत होने पर ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण बालि को वानर समुदाय के राजा पद पर अभिषिक्त किया गया था। बालि राजा हुए जबकि सुग्रीव उनके सचिव। सुग्रीव उनकी संपूर्ण सेवा और सहायता करते थे। दोनों भाइयों की प्रीति कथा सर्वत्र विख्यात थी।

बालि अद्‌भुत पराक्रमी था। उसके बल की चर्चा चहुँ ओर थी। बालि को यह वरदान प्राप्त था कि जब भी वह अपने किसी शत्रु से युद्ध करेगा तो शत्रु का आधा बल उसको प्राप्त हो जाएगा। इस प्रकार किसी के लिए भी बालि से युद्ध में विजय प्राप्त करना असंभव था, क्योंकि शत्रु का आधा बल तो बालि के पास आ ही जाता था। शत्रु तो आधे बल के साथ ही बालि के समक्ष लड़ पाता था और फिर बालि का अपना बल तो था ही।

मैं यह नहीं जानता कि इसमें कितनी सत्यता थी लेकिन किष्किन्धा के वयोवृद्ध बताते थे कि एक बार लंकापति रावण ने बालि को युद्ध के लिए ललकारा। बालि उस समय तीर्थयात्रा के लिए जाना चाहता था। उसने रावण को बहुत समझाया कि मैं अपना तीर्थाटन पूरा कर लूँ, तब तुम्हारी बात सुनूँगा, किन्तु रावण कहाँ मानने वाला था। अंत में तंग आकर बालि ने रावण को अपनी काँख में दबा लिया और उसको उसी अवस्था में लिए हुए ही सारी तीर्थयात्राएँ सम्पन्न की। समस्त कार्य निबटाकर ही बालि ने उसे अपनी काँख से मुक्त किया।

किष्किन्धा की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि उसके उत्तर में आर्यों का राज्य था और दक्षिण में राक्षसों का। दक्षिण की ओर से राक्षस गण किष्किन्धा में अनाधिंत रूप से आते रहते थे। आये दिन राक्षस एवं वन्य जातियों के शासकों में युद्ध होते रहते थे। दोनों तरफ के योद्धा युद्ध के लिए एक दूसरे को चुनौती देते रहते थे। अकारण होने वाले ये युद्ध श्रेष्ठता का मापदण्ड बने हुए थे। इसी क्रम में एक बार महिष वेश में रहनेवाले दुंदभि नामक एक राक्षस ने बालि को युद्ध के लिए ललकारा। वह मंदोदरी का भ्राता था। बालि से उसका युद्ध हुआ। दुंदुभि मारा गया। उसके मर जाने पर बालि ने क्रुद्ध होकर उसके शव को एक योजन दूर फेंक दिया। वह शव ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ऋषि के आश्रम में आकर गिरा। मतंग ऋषि उस समय यज्ञ अनुष्ठान कर रहे थे। इस शव को फेंके जाने के कारण उनकी काया पर रक्त के कुछ छींटे पड़ गए। क्रोध में उन्होने दुंदुभि के शव को देखा। उन्हें योगबल से यह जानते देर न लगी कि यह किसकी धृष्टता है। बस मुनिवर ने वहीं से शाप दे दिया कि यदि बालि ऋष्यमूक पर्वत पर आएगा तो उसके मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जाएंगे। बालि ने इस शाप के चलते इसके पश्चात् ऋष्यमूक पर्वत पर आना छोड़ दिया।

जैसा कि मैंने बताया कि किष्किन्धा अत्यन्त रमणीक और शान्त स्थल था। कई ऋषि-मुनि यहाँ तपस्यारत थे। इस स्थल पर यज्ञ, हवन, मंत्रोच्चार चलते ही रहते थे। लंकापति रावण के संरक्षण में रहने वाले खर, दूषण, त्रिषिरा जैसे राक्षस किष्किन्धा में तपस्यारत ऋषियों की यज्ञशाला में उत्पात मचाते रहते थे, परन्तु वे बालि के पराक्रम के सामने ठहर नहीं पाते थे।

एक दिन मायावी नामक राक्षस ने बालि को युद्ध के लिए ललकारा। वह मय का पुत्र था। मंदोदरी और दुंदुभि का भाई था। बालि उस समय सो रहा था, पर शत्रु की पुकार सुनकर तुरन्त उठकर उसका सामना करने के लिए आ गया। पीछे-पीछे सुग्रीव भी उसके साथ आ गए। बालि और सुग्रीव को एक साथ आते देखकर राक्षस भाग निकला और दूर जाकर एक कन्दरा में घुस गया।

''मैं इस दुष्ट से युद्ध करने के लिए इस कन्दरा में जाता हूँ। तुम बाहर रहकर मेरी प्रतीक्षा करो। तुम यह ध्यान रखना कि कहीं इस राक्षस का कोई अन्य साथी मुझे मार डालने के लिए इस कन्दरा के दरवाजे को बन्द न कर दे। तुम पन्द्रह दिनों तक मेरी प्रतीक्षा करना। यदि मैं तब तक न लौट आऊँ तो समझ लेना मैं मारा गया।'' बालि ने सुग्रीव से कहा।

सुग्रीव ने एक मास तक उस कन्दरा के प्रवेश द्वार पर पहरा देते हुए बालि की प्रतीक्षा की। एक दिन अचानक कन्दरा के अन्दर से फेन सहित रक्त की धारा बहती हुई निकली। सुग्रीव को ऐसा प्रतीत हुआ कि बालि मारा गया। उन्होंने भय के चलते एक विशाल शिला से उस कन्दरा का मुख बन्द कर दिया, ताकि वह राक्षस निकलकर उन्हें भी न मार डाले। इसके पश्चात् वे किष्किन्धा लौट आए। यह घटना इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त थी कि बालि का स्वर्गवास हो गया है। बालि को स्वर्गवासी मानते हुए स्थानीय परम्परा के अनुसार सुग्रीव को राजा बना दिया गया। बालि पुत्र अंगद अभी अल्पायु था। तारा, जो बालि की पत्नी थी, परम्परा और अधिकार के अनुसार अब सुग्रीव की पत्नी बन गई।

बालि तो अजेय था। उसने अंततः उस राक्षस को मार डाला। जब वह कन्दरा के द्वार के पास आया तो उसने देखा कि कन्दरा एक विशाल शिला के द्वारा बाहर से बन्द थी। बालि उस शिला को हटाकर जब किष्किन्धा लौटा तो उसने पाया कि सुग्रीव राजा बना बैठा है। उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। सुग्रीव के प्रति वह घृणा और क्रोध से भर उठा। बालि की दृष्टि में उसके अनुज ने उसके साथ घोर विश्वासघात किया था। वह अब सुग्रीव के प्राण हर लेना चाहता था। बालि के साथियों ने उसे समझाने और वस्तुस्थिति बताने का प्रयास किया किन्तु बालि कुछ भी सुनने और समझने को तैयार न था। मैंने भी बालि को वास्तविकता से अवगत कराने की चेष्टा की लेकिन अविश्वास का घना अन्धकार उसके मनोमस्तिष्क पर छाया हुआ था। बालि ने किसी की भी न सुनी। उसने सुग्रीव पर हमला बोल दिया। बालि की ताकत के समक्ष सुग्रीव असहाय थे। वह मैदान छोड़कर भाग गए। सुग्रीव के साथ मैं, नल, नील, जाम्बवान, तारा का भाई तार आदि भी चले आए। हम सबने सुग्रीव के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर शरण ली। जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूँ कि मतंग ऋषि के शाप के कारण इस पर्वत पर बालि का आना निषिद्ध था। उधर बालि ने सुग्रीव की पत्नी रूमा को अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार सुग्रीव अपना राज्य और अपनी पत्नी दोनों गँवा बैठे।

सुग्रीव अब किष्किन्धा पर्वत पर निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका आत्मविश्वास इस सीमा तक डगमगा चुका था कि उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हुए भी बालि का भय लगा रहता था। सुग्रीव को यह आशंका बनी रहती थी कि बालि ऋष्यमूक पर्वत पर भले ही न आ सकता हो किन्तु उसका वध करवाने के लिए अपने साथियों को तो भेज ही सकता है। सुग्रीव जब भी किसी अपरिचित व्यक्ति को किष्किन्धा के आस-पास देखते तो उन्हें यही लगता कि हो न हो बालि ने उन्हें मेरा वध कर डालने के लिए ही भेजा है। कितने आश्चर्य का विषय है कि मुझे देवताओं के माध्यम से अतुलित बल और पराक्रम

प्राप्त था किन्तु इसके होते हुए भी सुग्रीव इतने कष्ट में और भयभीत रहते थे।

सुग्रीव ने एकाध-बार मुझे उलाहना भी दिया, ''पवनपुत्र आपने मेरी कोई सहायता नहीं की उस युद्ध में, जबकि बालि मुझे मार डालने के लिए उद्यत था।'' मैंने सुग्रीव से बस यही कहा, ''मेरा आप दोनों भाइयों के झगड़े में पड़ना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था।'' इसलिए मैंने बालि से युद्ध नहीं किया। मैं सुग्रीव को इतना आश्वासन अवश्य देता था कि वह ऋष्यमूक पर्वत पर सुखपूर्वक निर्भय होकर रहें और अच्छे समय की प्रतीक्षा करें। मैं एक दास और सहयोगी की भाँति अपने स्वामी सखा सुग्रीव के प्रति निष्ठावान था। समय-समय पर उन्हें उचित मंत्रणा देता था। मेरा और सुग्रीव का सम्बन्ध निर्वासित राजा और सचिव के अतिरिक्त सखा वाला भी था। समय व्यतीत हो रहा था, सुग्रीव सदैव अपने राज्य व परिवार की क्षति को लेकर दुःखमग्न रहते थे। मैं उन्हें धीरज बंधाता था, ''चिन्ता मत करो मित्र सुग्रीव। धैर्य रखो। अच्छा समय निश्चित आएगा। सत्य की विजय सुनिश्चित है। ईश्वर का ध्यान रखो, अपने भाई के प्रति मन में द्वेष की भावना मत रखो। समय आने पर सब कुछ ठीक हो जाएगा।''

सुग्रीव के साथ हम सब वानर ऋष्यमूक पर निर्बाध विचरण करते और आनन्दित रहने का प्रयास करते।

एक बार हम वानरगण, सुग्रीव के साथ शिला पर बैठे हुए थे तो हमने एक विमान रथ को दक्षिण दिशा में तीव्र गति से जाते हुए देखा। रथ में एक सुकोमल नारी और एक विशालकाय पुरुष था। स्त्री दयनीय भाव से रो रही थी। स्त्री का संम्भवतः अपहरण हो गया था। उस स्त्री ने जब हमें शिला पर बैठे हुए देखा तो अपने वस्त्रों से एक टुकड़ा फाड़कर उसमें अपने आभूषण लपेट कर नीचे फेंक दिए थे। वानरों ने यह वस्त्र और आभूषण उठा लिए थे जिन्हें संभालकर सुग्रीव ने अपनी गुफा में रख लिया।

●

□ (सर्वत्र : मंजुल पब्लिशिंग हाऊस द्वारा प्रकाशित)
सम्पर्क : 9412290079

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर !
करुणा की नव अँगराई-सी
मलयानिल की परछाई-सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर !
शीतल कोमल चिर कम्पन-सी,
दुर्ललित हठीले बचपन-सी,
तू लौट कहाँ जाती है री-
यह खेल खेल ले ठहर-ठहर।

-जयशंकर प्रसाद